१७८ गाथा।

अव्वाबाहमणिंदियमणोवमं पुण्णपावणिम्मुक्कं।
पुणरागमणविरहियं णिच्चं अचलं अणालंबं।।१७८।।

निर्बाध, अनुपम अरु अतीन्द्रिय, पुण्यपापविहीन है।
निश्चल, निरालम्बन, अमर पुनरागमन से हीन है॥१७८॥

टीका : यहाँ भी,... ऐसा शब्द कहकर मानो पूर्व में कहा, वही कहते होंगे, ऐसा। स्वयं तो उसमें पारिणामिकभाव उतारा है। २७७ में तो यह कल आ गया न? और यह तो सिद्ध भगवान परमात्मतत्त्व की गाथा है। ...कारणपरमात्मा की। यह गाथाएँ अब सब कार्यपरमात्मा-सिद्धपरमात्मा (हुए उनकी आयेगी)। इस टीका में **यहाँ भी,...** ऐसा शब्द है, इतनी सन्धि की है। पाठ में है न? '**अत्रापि**' पहले है न? उसका अर्थ वहाँ कहा, ऐसा ही यहाँ भी कहा है। परन्तु वह तो अपेक्षा से बराबर है।

कारणपरमात्मा जो त्रिकालस्वरूप है, उसकी व्याख्या करो या कार्य की करो। जैसे कार्य में रागादि कुछ नहीं है, उसी प्रकार आत्मा में भी नहीं है, ऐसा लिया जाता है। वस्तु जैसी अन्दर चीज़ है, वैसी ही पर्याय प्रगट हो तो वह ऐसी ही है और उसके जैसी ही है। समझ में आया? उसकी शैली है न इसमें? कि सिद्ध का जो कार्य प्रगट हुआ,

उसमें जो कुछ नहीं है, वैसा आत्मा द्रव्य में भी नहीं है। बात इतनी है कि आत्मद्रव्य, वह त्रिकाली परमस्वभावभाव है और सिद्ध में पर्याय क्षायिकभाव की है।

कहते हैं कि **यहाँ भी, निरुपाधि स्वरूप जिसका लक्षण है, ऐसा परमात्मतत्त्व कहा है।** सिद्ध भगवान का स्वरूप। **(परमात्मतत्त्व ऐसा है:—) समस्त दुष्ट अधरूपी वीर शत्रुओं की सेना के उपद्रव को...** वैरी-वरुखी। ठीक! धांधल तो अपना काठियावाड़ी शब्द है। धांधल-फांदल नहीं कहते? धमाल मत करो। तूफान मत करो। तुम्हारे क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : हमारे में धांधलबाजी कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह फांदलबाजी।

समस्त दुष्ट अधरूपी वीर... कठोर जो दुष्ट पुण्य-पापरूपी अघ। पुण्य-पाप सब अघ में गिने जाते हैं इसमें। पुण्य-पापरूपी जो अघ, ऐसा जो **वीर शत्रुओं की सेना के उपद्रव...** आहाहा! पुण्य-पाप के भाव वीर सेना है, अनादि से उसमें धांधल है, ऐसा कहते हैं। ऐसे को **अगोचर...** ऐसी सेना के धांधल को अगम्य **ऐसे सहजज्ञानरूपी गढ़ में आवास होने के कारण...** सहज ज्ञानरूपी किले में आत्मा का आवास है। इसलिए **अव्याबाध (निर्विघ्न) है;...** सिद्ध भगवान को कोई विघ्न नहीं है। उसी प्रकार द्रव्य को भी कोई विघ्न नहीं है। द्रव्य भी ऐसा ही है। यहाँ तो ऐसा कहा, सहज ज्ञानरूपी किला। उसमें तत्त्व रहा हुआ है। ज्ञानरूपी किले में सिद्ध भगवान रहते हैं। उन्हें कोई बाहर का विघ्न या बाधा-पीड़ा नहीं है। और कैसे हैं वे? ऐसा ही आत्मा है, ऐसा समझना। समझ में आया?

सर्व आत्मप्रदेश में भरे हुए चिदानन्दमयपने के कारण अतीन्द्रिय है;... असंख्य प्रदेश में, ऐसा लिया। **सर्व आत्मप्रदेश में भरे हुए चिदानन्दमय...** ज्ञान और आनन्दमय है। सिद्ध तो असंख्य प्रदेशों में अकेले ज्ञान और आनन्दमय हैं। यह आत्मा भी अन्दर वस्तु से असंख्य प्रदेश में अकेला ज्ञान और आनन्दमय भरपूर तत्त्व है। कहो, समझ में आया? **अतीन्द्रिय है; तीन तत्त्वों में विशिष्ट होने के कारण (बहिरात्मतत्त्व, अन्तरात्मतत्त्व और परमात्मतत्त्व इन तीनों में विशिष्ट—मुख्य प्रकार का—उत्तम होने के कारण) अनुपम है;...** उसे कोई उपमा नहीं। तीन में वह उत्तम हैं, ऐसा कहते है।

(बहिरात्मतत्त्व, अन्तरात्मतत्त्व और परमात्मतत्त्व इन तीनों में विशिष्ट—मुख्य प्रकार का—उत्तम होने के कारण)... सिद्धपद, वह उत्तम तत्त्व है। इसलिए उसे अनुपम-उसे कोई उपमा नहीं है। वस्तु भगवान आत्मा भी ऐसा है। यह तो बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा की पर्याय से भी भिन्न है। सिद्ध को ही यह सब है, उतारा है। टीका में सिद्ध से ही चलता है। **संसाररूपी स्त्री के सम्भोग से उत्पन्न होनेवाले सुख-दुःख का अभाव होने के कारण पुण्य-पाप रहित है;...** सिद्ध को आत्मा के आनन्द की उत्पत्ति है। इसलिए संसार की स्त्री से उत्पन्न सुख-दुःख की कल्पना, ऐसा जो उसमें भाव, उसका अभाव है। वह पुण्य-पापरहित है। यह आत्मा भी संसार के राग से उत्पन्न सुख-दुःख की कल्पनारहित आत्मा है।

पुनरागमन के हेतुभूत... (चार गतियों में से किसी गति में) फिर से आना; पुनः जन्म धारण करना सो। ऐसा जो **पुनरागमन के हेतुभूत प्रशस्त-अप्रशस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव होने के कारण...** प्रशस्त और अप्रशस्त। ठीक! मोह प्रशस्त-अप्रशस्त, राग प्रशस्त-अप्रशस्त, द्वेष प्रशस्त-अप्रशस्त। तीनों। अपेक्षा है न? कहते हैं कि **प्रशस्त-अप्रशस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव होने के कारण पुनरागमन रहित है;...** सिद्ध को वहाँ से वापस आना नहीं है।

नित्यमरण के तथा उस भव सम्बन्धी मरण के कारणभूत कलेवर के (शरीर के) सम्बन्ध का अभाव होने के कारण नित्य है;... लो! नित्य मरण है न? समय-समय आयु। 'समय-समय आयु उदय आविचीमरण है न?' क्षण-क्षण आयुष्य के परमाणु जाते हैं। क्षण-क्षण में मृत्यु है। जितना आयुष्य लेकर आया है, उसमें से क्षण-क्षण में मृत्यु होती जाती है। वह नित्य मरण है। उसका भी इसमें अभाव है। नित्य मरण का मूल कारण तो शरीर है, उसका भी इसमें (अभाव है)। **उस भव सम्बन्धी मरण के कारणभूत कलेवर के (शरीर के) सम्बन्ध का...** आत्मा को शरीर का सम्बन्ध है ही नहीं। सिद्ध को। इसलिए वे नित्य हैं।

निज गुणों और पर्यायों से च्युत न होने के कारण... भगवान सिद्ध परमात्मा अपने निजगुणों—ज्ञान-दर्शन-आनन्दादि भावों और अनन्त केवलज्ञानादि की पर्याय, उनसे च्युत नहीं होते। उनमें से तो कभी भ्रष्ट नहीं होते। उसके कारण...

मुमुक्षु : त्रिकाली में यह बोल किस प्रकार उतारना?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाली में यह नहीं है। यहाँ तो सिद्ध की बात है। वे तो ऐसे... उनमें नहीं वह इसमें नहीं, यह अलग बात है। त्रिकाली में तो पर्याय नहीं। उसका यहाँ नहीं उतरता। जितना उतरे, उतना उतरे न! यहाँ तो क्षायिक पर्याय है उन्हें, ऐसा सिद्ध करना है न?

परद्रव्य के अवलम्बन का अभाव होने के कारण... सिद्ध भगवान को परद्रव्य का अवलम्बन नहीं है, इसलिए वे **निरालम्ब है।** उसी प्रकार आत्मा भी परद्रव्य के आलम्बन के अभाव बिना का निरालम्बी तत्त्व है। भगवान आत्मा पर के अवलम्बन रहित है।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १३८वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

आसन्सारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ता:,
सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्विबुध्यध्वमन्धा:।
एतैतेत: पद-मिद-मिदं यत्र चैतन्य-धातु:,
शुद्धः शुद्धः स्वरसभरत: स्थायिभावत्वमेति।।

श्लोकार्थ : (श्रीगुरु संसारी भव्य जीवों को सम्बोधते हैं कि:—) हे अन्ध प्राणियों! अर्थात् कि त्रिकाली द्रव्य को नहीं देखनेवाले। जिसे देखना (चाहिए), उसे नहीं देखनेवाले हे अन्ध प्राणियों! ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? **अनादि संसार से लेकर...** एकेन्द्रिय, नित्य निगोद से **लेकर पर्याय-पर्याय...** समय-समय में **यह रागी जीव सदैव मत्त वर्तते हुए...** विकार में गहल बनते हुए। अपना निजपद आनन्द और ज्ञान (स्वरूप है)। ऐसे निजपद से अन्ध और पर में मत्त। समझ में आया? राग और द्वेष, शुभ और अशुभभाव में मत्त हुए—मस्त हुए। यही मैं हूँ, ऐसा मानकर पागल हो गये हैं। समझ में आया?

रागी जीव सदैव मत्त वर्तते हुए... निरन्तर विकार में ही वर्तते, पुण्य-पाप के विकल्प में ही वर्तते। जो इसका स्वरूप नहीं है, जो इसके स्वभाव में नहीं है, उसमें-विभाव में तादात्म्यरूप से (वर्तते हुए), ऐसा कहना है। विभाव में तादात्म्यरूप से वर्तते हुए। **जिस पद में सो रहे हैं—नींद ले रहे हैं, वह पद अर्थात् स्थान अपद है—अपद है,...**

वह राग का पद, वह तेरा नहीं है। उसमें निश्चिन्तता से सो रहा है, कहते हैं। आहाहा! राग पुण्य -पाप का विकल्प, वह तेरा पद नहीं है। इसमें तू चद्दर तान कर सो रहा है, कहते हैं। जहाँ तू (नहीं है), उसमें सो रहा है, कहते हैं। आहाहा!

यह **अपद है—अपद है, (तुम्हारा स्थान नहीं है,)...** व्यवहार के विकल्प जो दया, दान, व्रतादि, राग, उसमें कहते हैं कि अनादि से सो रहा है, वह पद तेरा नहीं है, वह तेरा स्थान नहीं है, वह तेरा धाम नहीं है, वह तेरा गाँव नहीं है। समझ में आया? पहलू बदल, ऐसा कहते हैं। **ऐसा तुम समझो।** ऐसा कहा न? **(दो बार कहने से अत्यन्त करुणाभाव सूचित होता है।)** दो बार कहा न? **अपद है—अपद है,...** आहाहा! भगवान अपना आनन्दधाम निज ज्ञानधाम स्वभाव ध्रुव को भूलकर अकेले पुण्य-पाप के विकल्प का-विकार का-विभाव का भाव, उसमें सो रहा है, वह तेरा स्थान, तेरा पद, तेरा भाव वह नहीं। कहो, समझ में आया? शरीर और देश, कुटुम्ब, इज्जत तो कहीं रह गये, वह तो तेरा स्थान नहीं, वह तेरा घर नहीं परन्तु पुण्य-पाप के भाव, वह भी तेरा स्थान और तेरा घर नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो भाई! घर कहते हैं न? हमारी घरवाली है, यह हमारा घरवाला है, ऐसा कहते हैं न? क्या करना इसमें? घरवाला-घरवाली कहाँ से आया? पुण्य-पाप के भाव वह घरवाला है, ऐसा जहाँ नहीं... आहाहा! समझ में आया? वह तो पर-घर है। आहाहा! स्त्री, पुत्र, परिवार तो कहीं रह गये। वे तो पर-घर के पर के पदार्थ हैं। परन्तु इसने उनमें नहीं, ऐसे भाव खड़ा करके सो रहा है, वह तेरा घर नहीं है, आहाहा! अब वह करवट बदल, कहते हैं। पहलू बदल। करवट समझते हो? पहलू बदल। समझ। समझ, यह नहीं काम करे। आहाहा! पुण्य के भाव, वह तेरा घर नहीं है। भाव, हों! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प राग, वह तेरा पद नहीं है, वह तो विभाव का पद है, पर का है।

ऐसा तुम समझो। ऐसा आया न? **(दो बार कहने से अत्यन्त करुणाभाव सूचित होता है।)** भाई! वह तेरा घर नहीं, भाई! आहाहा! पिता कहता है न? लड़का कुछ व्यभिचार में चढ़ गया हो बाबल-बाघरी (निम्न जाति की स्त्री), अरे! भाई! यह अपना काम, घर नहीं है। भाई! यह तू कहाँ चढ़ गया? इसी प्रकार यह पुण्य-पाप के भाव में कहाँ चढ़ गया है तू? कहते हैं। आहाहा! यह तेरा घर नहीं, यह तेरा पद नहीं, यह तेरा भाव नहीं। तेरा स्थान नहीं। वहाँ रहने योग्य नहीं। आहाहा!

इस ओर आओ—इस ओर आओ,... लो! ठीक! वह दिशा बदल दो। जयन्तीभाई! परन्तु वह लड़का अमेरिका पढ़े। वह बड़ा कहने में ऊँचा लगे। उसे छोड़ना किस प्रकार? वह तो छूटा हुआ ही पड़ा है। तुझमें कहाँ घुस गया है? परन्तु तूने खड़े किये हुए पुण्य और पाप में... है। ....चलता है। ...गये न भाई? नवरंगभाई गये? **इस ओर आओ —इस ओर आओ,...** यहाँ कहते हैं। पुण्य के परभाव में बस गया है तो अब विमुख हो। ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? स्त्री, पुत्र, घर, मकान, दुकान तेरा नहीं है, वह तो यहाँ कहा नहीं। वह तो था ही कब? परन्तु वहाँ वह खड़ा करके माना है, वह तेरा नहीं है। वह तो माने तो भी तेरे नहीं हैं। यह तो माने कि राग मेरा है, ऐसा यहाँ अस्तित्व है। त्रिकाली अस्तित्व की मौजूदगी की खबर नहीं। इसलिए कहीं अपना अस्तित्व तो मानेगा न! आहाहा!

मुमुक्षु : महासद्भाग्य से यह मिला, उसका निषेध कैसे किया जाए?

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक, प्रश्न उठे। महाभाग्य से विष्टा मुँह में आयी, उसे कैसे निकाल डाला जाए? मैसूर की विष्टा अच्छी आयी। एक व्यक्ति को उल्टी हुई। उल्टी होकर उसमें उसके मुँह में विष्टा आयी। उठ न जाकर उल्टी हुई। इसकी अन्तड़ियों का भाग... उसमें विष्टा आयी। अब उसे कैसे निकालना? यहाँ तो पुण्य की बात है। पुण्य का भाव है, उसको कठिन लगता है। आहाहा! विष्टा कहते हैं। अरे! जहर है। सुन न अब।

भगवान अमृतस्वरूप आत्मा से विरुद्ध भाव राग, वह तो जहर है। जहर में बसना, वह तेरा स्थान नहीं है, प्रभु! तू तो अमृत में रहनेवाला है। आहाहा! उस हंस को एक दाने का चुग्गा नहीं होता परन्तु कंकड़ का तो किसका होगा? हंस वह कहीं दाना खाता होगा? हंस तो मोती चुगता है। बापू! तू कौन है, भाई! आहाहा!

देखो न! करुणा से कहा है। आहाहा! अपद है, अपद है। यह, हों! पुण्य के संयोग-बंयोग की बात नहीं। जो विकारी भाव दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति का भाव, वह रागभाव है, वह अपदभाव है। प्रभु! वह तेरा स्थान नहीं है। आहाहा! **इस ओर आओ—इस ओर आओ,...** ऐ! ऐसे गया है, भाई! आहाहा! बहुत संक्षिप्त। राग के विकल्प के वेग में गया है, प्रभु! तू वहाँ से हट और अन्दर चैतन्य आनन्द धातु है, चैतन्य से विराजमान भगवान है, वहाँ आ न, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, भीखाभाई! क्या है? आहाहा! हीराभाई जैसे लड़के, बंगड़ी का व्यापार, तीस रुपये के वेतन में दस-दस हजार की

आमदनी। और वापस होशियार, चतुर। यह पद तेरा नहीं, ऐसा कहते हैं। यह तो नहीं, उस ओर के राग का भाव भी तू नहीं। वह तो नहीं परन्तु तीन लोक के नाथ की ओर का रागभाव, वह भी तेरा पद नहीं। आहाहा! प्रभु! तू तो तीन लोक का नाथ स्वयं तू है न? आहाहा! उस ओर आ जा न वहाँ! इसके पक्ष में चढ़ न! आहाहा! बड़े के संग में जा। इस पामर के संग को छोड़ दे।

इस ओर आओ—इस ओर आओ, (यहाँ निवास करो,) तुम्हारा पद यह है—यह है... आहाहा! छह बोल लिये हैं। अपद है, अपद है। दो यह हुए। यह पद है, यह पद है। आनन्द और ज्ञान से विराजमान प्रभु तू है, वह तेरा पद है। आहाहा! **तुम्हारा पद यह है—** पूर्ण आनन्द का धाम, वह तेरा पद है। वहाँ नजर कर न! राग की नजर छोड़ न, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह है जहाँ शुद्ध... लो! है न? दो बार वापस यह आया। **शुद्ध-शुद्ध...** गजब श्लोक है, हों! यह तो समयसार का कलश है। आहाहा! यह तो बहुत बार पढ़ा जाता है। **यह है—यह है...** क्या है यह? **जहाँ शुद्ध-शुद्ध चैतन्यधातु...** है। आहाहा! **शुद्ध-शुद्ध चैतन्यधातु...** द्रव्य से शुद्ध और भाव से शुद्ध। ऐसी चैतन्यधातु, ज्ञानधातु, ज्ञान का, आनन्द का स्वभावभाव ऐसा जो भाव **निज रस की अतिशयता के कारण...** वह स्वयं अपने स्वभाव की महिमा के कारण **स्थायी भावपने को प्राप्त है...** स्थिर-स्थिर स्थायी नित्य है। कहो, समझ में आया? एक श्लोक में बस है। आहाहा! राग की, पुण्य की दृष्टि के कारण और उसके अस्तित्व के भास में पूरा भगवान चैतन्यधातु अस्तिरूप से विराजमान है, वह तुझे नजर में नहीं आया। समझ में आया?

शुद्ध चैतन्यधातु... ज्ञानानन्द धातु अर्थात् जिसने ज्ञान और आनन्द को धार रखा है, ऐसी चीज़ **निज रस की अतिशयता के कारण...** अपने स्वभाव की सामर्थ्यता के कारण, अपने स्वभाव की विशेषता के कारण चैतन्य धातु निज शक्ति के स्वभाव की खास विशेषता के कारण **स्थायी भावपने को प्राप्त है अर्थात् स्थिर है—**रागभाव तो क्षण-क्षण में भिन्न-भिन्न कर्म के आधीन हुआ भाव भिन्न-भिन्न हुआ करता है। वह कहीं स्थायी नहीं है। यह स्थायी है।

इसका स्वीकार इसे कैसे हो? पहले अनुमान से ऐसा निर्णय करे कि विकल्पादि

जो भाव है, वह तो क्षणिक अस्थायी अपद है। इनके पीछे अन्तर में पूरी चीज़ है, वस्तु है। चैतन्य धातु से भरपूर, ऐसा जो भगवान आत्मा उसके सन्मुख जाना, उसमें झुकना, ऐसा पहले विकल्प द्वारा निर्णय करे तो उसमें लक्ष्य बदलने का प्रसंग बने। समझ में आया? राम की क्रीड़ा में आ जा, भाई! ऐसा कहते हैं। अब यह विभाव के खेल छोड़। आहाहा!

स्थिर है—अविनाशी है। भगवान चैतन्य धातु अर्थात् जैसे सोने के धातु सोनेरूप धार रखी है। चाँदी की धातु, हीरा की धातु। उसी प्रकार यह चैतन्य धातु है, उसने चैतन्यपना अनादि-अनन्त धार रखा है। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके पक्ष में आ, यहाँ आ... यहाँ आ। वह शुद्ध है, शुद्ध है। आहाहा! गजब वाणी।

(यहाँ 'शुद्ध' शब्द दो बार कहा है, वह द्रव्य और भाव दोनों की शुद्धता सूचित करता है।) द्रव्य से भी शुद्ध है और भाव से-गुण से भी शुद्ध है। **सर्व अन्य द्रव्यों से पृथक् होने के कारण...** भगवान आत्मा अन्य कर्म, शरीरादि रजकणों के द्रव्यों से भिन्न होने से **शुद्ध है और पर के निमित्त से होनेवाले अपने भावों से रहित होने के कारण...** वापस अपने भावों से—शब्द (ऐसे लिये हैं)। **पर के निमित्त से होनेवाले अपने भाव...** ऐसा। अपनी पर्याय में होनेवाले। पुण्य और पाप, राग और द्वेष, विभाव संकल्प-विकल्प **पर के निमित्त से होनेवाले अपने भाव...** उसकी पर्याय में होनेवाले, उनसे रहित। इस कारण **भाव से शुद्ध है।**

श्लोक-२९७

और (इस १७८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(शार्दूलविक्रीडित)

भावाः पञ्च भवन्ति येषु सततं भावः परः पञ्चमः,
स्थायी सन्सृतिनाशकारणमयं सम्यग्दृशां गोचरः।
तं मुक्त्वाखिलरागरोषनिकरं बुद्ध्वा पुनर्बुद्धिमान्,
एको भाति कलौ युगे मुनिपतिः पापाटवीपावकः।।२९७।।

(वीरछन्द)

पाँच भाव हैं जिनमें पञ्चम परम भाव ही शाश्वत् है।
भव विनाश का कारण सम्यग्दृष्टि को ही गोचर है॥
राग-द्वेष का पुञ्ज नाशकर बुधजन परमभाव जानें।
एक वही कलियुग में अघवन दाहक मुनिवर शोभित हैं॥२९७॥

[श्लोकार्थः—] भाव पाँच हैं, जिनमें यह परम पंचम भाव (परमपारिणामिकभाव) निरन्तर स्थायी है, संसार के नाश का कारण है और सम्यग्दृष्टियों को गोचर है। बुद्धिमान पुरुष समस्त राग-द्वेष के समूह को छोड़कर तथा उस परम पंचम भाव को जानकर, अकेला, कलियुग में पापवन की अग्निरूप मुनिवर के रूप में शोभा देता है (अर्थात् जो बुद्धिमान पुरुष परमपारिणामिकभाव का उग्ररूप से आश्रय करता है, वही एक पुरुष पापवन को जलाने में अग्नि समान मुनिवर है)।२९७।

श्लोक - २९७ पर प्रवचन

और (इस १७८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

भावाः पञ्च भवन्ति येषु सततं भावः परः पञ्चमः,
स्थायी सन्सृतिनाशकारणमयं सम्यग्दृशां गोचरः।
तं मुक्त्वाखिलरागरोषनिकरं बुद्ध्वा पुनर्बुद्धिमान्,
एको भाति कलौ युगे मुनिपतिः पापाटवीपावकः।।२९७।।

श्लोकार्थ : भाव पाँच हैं,... उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव और पारिणामिकभाव। पाँच भाव हैं। उदयभाव, यह राग-द्वेष का भाव, वह उदयभाव है। उपशमभाव समकित की पर्याय। दर्शनमोह को शान्त होने पर और अपने में उस प्रकार का पुरुषार्थ होने पर जो क्षय हुए बिना की दशा (होती है वह) उपशम (भाव)। क्षायिकदशा पर्याय—रागादि का क्षय। क्षयोपशमदशा (उसमें) कुछ उदय और कुछ उघाड़ (होवे)। ऐसा उदय-उपशम-क्षयोपशम और क्षायिक भाव चार और पाँचवाँ पारिणामिकभाव।

भाव पाँच हैं, जिनमें यह परम पंचम भाव (परमपारिणामिकभाव) निरन्तर

स्थायी है,... लो! स्थायी है, स्थायी है। ऐसा है। आहाहा! यह कारणपरमात्मा कहो, पंचम पारिणामिकभाव कहो। समझ में आया? नियमसार में पारिणामिकभाव के गीत बहुत गाये हैं। खुल्ले।

अहो! **जिनमें यह पंचम भाव (परमपारिणामिकभाव) निरन्तर स्थायी है,...** क्षायिकभाव भी समय-समय में परिणमता है। यह तो ऐसा का ऐसा अपरिणामी त्रिकाल वस्तु। पारिणामिकभाव से अपरिणामी। आहाहा! समझ में आया? पारिणामिकभाव से अर्थात् सहज स्वभाव से। बदले बिना का ऐसा का ऐसा स्थायी नित्य है और वह भाव **संसार के नाश का कारण है...** लो! समझ में आया? इस प्रकार मोक्ष का कारण, संसार के नाश का कारण तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय है। परन्तु इस पर्याय का कारण यह द्रव्य है। आहाहा!

संसार के नाश का कारण है... त्रिकाली स्थायी भाव, नित्य भाव, ध्रुव भाव, अविनाशी स्वभावभाव, जिसके आश्रय से संसार का नाश हो, इसलिए वह संसार के नाश का कारण है। कहो, यहाँ तो द्रव्य को संसार का नाश का कारण है, ऐसा कहा है। समझ में आया? क्योंकि द्रव्य त्रिकाली वस्तु है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते हैं और उस पर्याय से संसार की पर्याय का नाश द्रव्य के आश्रय से होने से द्रव्य ही स्वयं संसार के नाश का कारण है, ऐसा कहा। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टियों को गोचर है। वस्तु जो ध्रुव चैतन्य है, वह सम्यग्दर्शन में गम्य है। सम्यग्दृष्टि को त्रिकाल ध्रुव का भान वर्तता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? चैतन्य भगवान आत्मा अनादि-अनन्त स्वभाव का भण्डार भरपूर भगवान, ऐसी चीज़, ऐसी वस्तु धर्मी को गम्य है। एक ओर कहे कि चार भाव को गम्य नहीं है। आया है इसमें पहले। चार भाव को गम्य नहीं है। इसका अर्थ ही (यह) कि चार भाव के आश्रय से गम्य नहीं है, ऐसा। क्षायिकभाव को भी गम्य नहीं है, ऐसा आता है। इसका अर्थ कि क्षायिकभाव का आश्रय करने पर वह गम्य है, ऐसा नहीं है। उसका (पारिणामिकभाव का) आश्रय करने पर गम्य होता है। आहाहा! ऐसा भारी कठिन काम है। जिसने यहाँ जहाँ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा में धर्म माना हो, अब उसे उसमें से हटना (कठिन) पड़ता है।

यहाँ तो उनसे तो ठीक, परन्तु यह क्षायिकपर्याय होती है, उससे भी भिन्न है।

क्षायिकपर्याय के आश्रय से भी कर्म का नाश नहीं होता, ऐसा कहा न इसमें ? त्रिकाल के आश्रय से होता है। समझ में आया ? संसार का नाश तो, मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र वह संसार, उसका नाश तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से होता है। परन्तु वह तो दोनों पर्याय की बात की है। यहाँ तो ध्रुव के आश्रय से संसार का नाश होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बड़ा भगवान कष्ट मिटावे ऐसा परमात्मा है, कहते हैं। समझ में आया ? तेरे संसार का कष्ट मिटा डाले, ऐसा यह भगवान है। जिसकी शरण लेने से संसार का नाश हो जाता है। वह सम्यग्दृष्टि को गम्य है।

बुद्धिमान पुरुष समस्त राग-द्वेष के समूह को छोड़कर... मतिज्ञानवाला, बुद्धिवाला मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ऐसी बुद्धिवाला जीव **समस्त राग-द्वेष के समूह को...** समस्त जो उदयभाव है, पुण्य-पाप के विकल्प भी वृत्ति का उदयभाव जो है, उसे छोड़कर। लो! ठीक! **राग-द्वेष के समूह को छोड़कर...** परन्तु क्या हो ? शैली तो सब कैसी डाले! क्षण-क्षण में कुछ ऐसे डालते होंगे ? वह तो अपने आप नाश होते हैं... अपने आप नाश होते हैं... होते हैं तो अपने आप। उत्पन्न न हों, इसका अर्थ नाश होता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! शब्दों की रचना से कहीं चर्चा का पार नहीं पड़ता। उसका भाव समझना चाहे तो पार पड़े और वह अकेला शास्त्र के अभ्यास से निवेड़ा नहीं आता। आहाहा! अनुभव से निवेड़ा आता है। समझ में आया ?

राग-द्वेष के समूह को छोड़कर तथा उस परम पंचम भाव को जानकर,... ऐसा वापस। यहाँ उसका लक्ष्य छोड़कर यहाँ लक्ष्य किया, पंचम पारिणामिकभाव। परम पंचम भाव, अकेला ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, आनन्दभाव, पूर्णानन्दरूप नित्य अविनाशी सदृशभाव, उसे जानकर। लो! यह जानना। **अकेला...** आहाहा! **अकेला, कलियुग में पापवन की अग्निरूप मुनिवर के रूप में शोभा देता है...** आहाहा! अरे! ऐसे पंचम काल में भी कलयुग में भी पुण्य-पाप के विकल्प का आश्रय छोड़कर अथवा लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली पंचम परमभाव की शरण में गया, वह मुनि अकेला हुआ। जिसने पुण्य के विकल्प के दोपने का भी सम्बन्ध नहीं है। अकेला कलयुग में... आहाहा! ऐसा कलयुग है, तो भी अकेला पड़कर अन्दर **पापवन की अग्निरूप मुनिवर...** पापरूपी वन को जला डालनेवाले मुनिवर जैसा। **मुनिवर के रूप में शोभा देता है...** आहाहा! समझ में आया ?

एक बार एक ओर तो ऐसा कहा था, प्रभु! आपने कहे हुए चारित्र को पालने में हम तो इस काल में आपकी भक्ति हमें तारेगी। कहा था न? भक्ति अर्थात् आत्मा का सम्यग्दर्शन। न कर सके सब, तो एक श्रद्धा तो रखना। ऐसा आया था न? यहाँ तो कहते हैं, अभी मुनिपना शोभता है। समझ में आया? आपने कहे हुए मुनिवर... इस पंचम काल में हमारे जैसों को... स्वयं 'पद्मनाथ' मुनि स्वयं कहते हैं।

यहाँ कहते हैं, अरे! ऐसे कलयुग में भी भले काल कलयुग हो परन्तु इन राग-द्वेष के उदयभाव का लक्ष्य छोड़कर पूर्ण स्वभाव ध्रुवधातु की शरण में गया, वह पुण्य-पाप के वन को जला डालने के लिये अग्नि समान मुनिवर अन्तर की शरण में गया, वह शोभता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह पुण्य-पाप का भाव, पुण्य का व्यवहार अच्छा हो, इसलिए शोभता है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! पुण्य के आचरण अच्छे हों, ऐसे चरणानुयोग के उस बाह्य आचरण को जाना जा सकता है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि हमारी शोभा, हमारा भगवान ध्रुव, उसकी शरण में जाए, वह हमारी शोभा है। शरण में वर्तते हैं, वह हमारी शोभा है। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम या अट्ठाईस मूलगुण के वर्तन बराबर हो तो शोधते हैं, वह हमारी शोभा नहीं है। कहो, पंचम काल के मुनि भी इतनी बात अन्दर जोरदार करते हैं।

मुमुक्षु : स्वयं की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, स्वयं की ही बात है। कारणपरमात्मा पूर्णानन्द प्रभु पंचम परमभाव को जानकर उसमें रहते हैं। विकल्प को छोड़कर अकेला रहता है। ऐसे भाव में अन्तर में बसते हैं, वे **अग्निरूप मुनिवर के रूप में शोभा देता है...** पुण्य-पाप को जलाने को। आहाहा! शुभाशुभभाव उत्पत्ति न होने को अग्नि समान हैं। आहाहा!

(अर्थात् जो बुद्धिमान पुरुष परमपारिणामिकभाव का उग्ररूप से आश्रय करता है,...) निज स्वभाव की अस्ति ऐसा त्रिकाली भाव, उसका उग्ररूप से आश्रय करते हैं। पर्याय को आश्रय द्रव्य का देते हैं। **(वही एक पुरुष...)** देखो भाषा! **(वही एक पुरुष पापवन को जलाने में अग्नि समान मुनिवर है।)** व्यवहार की क्रिया, वह जलाने जैसी है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। रखने जैसी और पालने जैसी नहीं है। आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने अट्ठाईस मूलगुण पाले थे। ऐ... पण्डितजी! अरे! भगवान! वह तो व्यवहारनय का

कथन है। उसका ज्ञान कराते हैं। बाकी है मुनि, पुण्य और पाप के वन को जलाने में अग्नि समान मुनिवर हैं। उन्हें मुनि कहते हैं। यह णमो लोए सव्व साहूणं में ऐसे मुनि होते हैं। कहो, समझ में आया? वे कहें, णमो लोए सव्व साहूणं, उसमें कहाँ आये जैन के साधु? परन्तु साधु ही जैन में हों, वे साधु होते हैं। पंचम परमभाव की शरण में उग्ररूप से वर्तते हों, वे ही साधु। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो पंच महाव्रत को पालनेवाला हूँ, इसलिए शोभता है, यह बात नहीं है। उनका तो जलानेवाला हूँ, इसलिए शोभता हूँ, ऐसा कहा है। समझ में आया? भगवान आत्मा अपना शुद्ध ध्रुवभाव, उसके आश्रय से पुण्य-पाप को जलाने में अग्नि समान ऐसे सन्त शोभते हैं। जैन सम्प्रदाय में ऐसे साधु (हों), उन्हें मुनि कहा जाता है। कहो, समझ में आया? अब अभी तो पंचम परमभाव क्या, उसका तो नाम भी सुना न हो। पंचम परमभाव क्या होगा कुछ? सम्प्रदाय में कुछ नाम नहीं। है?

मुमुक्षु : पारिणामिकभाव ऐसा नाम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम आवे, उसमें उपदेश में कहाँ है? वह तो शास्त्र के नाम आते हैं। पाँच भाव और पंचम पारिणामिकभाव, नित्य भाव, उसका-अस्ति का शरण लेना, उसके आश्रय में जाना, उसका स्वीकार होना, उसमें स्थित होकर रहना, इसका नाम मुनि है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : तत्त्वार्थसूत्र में तथा अन्य शास्त्र में तो पारिणामिकभाव आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न, शब्द आते हैं परन्तु उनकी व्याख्या कहाँ है कहीं? तत्त्वार्थसूत्र कहाँ उनके स्थानकवासी में है नहीं। श्वेताम्बर में उनका लेकर रखा है। उसका मूल है तो दिगम्बर का। उसमें फेरफार करके हमारा है। स्थानकवासी तो मानते हैं। यह तो भाई ने एक खड़ा किया था। आत्माराम ने अपने बत्तीस सूत्र के साथ मिलाने को। बिल्कुल खोटी बात। बत्तीस सूत्र में से...

मुमुक्षु : स्थानकवासी साधु ने बाहर प्रसिद्ध किया कि हमारा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें है न वह। क्या नाम? है न वह आत्माराम। है न, उसमें मिलाना चाहे बत्तीस सूत्र को।

मुमुक्षु : उनके शास्त्र में से निकाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटी बात। थे कब।

मुमुक्षु : ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखे न, लिखने में क्या जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह आधार भी दिये थे न शास्त्र के?

पूज्य गुरुदेवश्री : आधार मेल बिना के दिये थे। ....क्या नाम उस पुस्तक का? भूल गये। अपने है न, 'तत्त्वार्थसूत्र समन्वय' ऐसा कुछ है। आत्मारामभाई ने किया है। उन भाई ने आत्माराम नाम क्या? आत्मारामजी ने बनाया है। तत्त्वार्थसूत्र में से इस प्रकार निकाला हुआ है। उनके थे ही कब? वे तो अभी निकले। श्वेताम्बर स्थानकवासी थे ही कब? दो हजार वर्ष पहले निकले हैं... उसमें बनाया हुआ।

मुमुक्षु : अध्यात्म के शास्त्र भी थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र तो किसके थे?

मुमुक्षु : श्वेताम्बर के।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भाई है न? मोहनलाल दोशी संघवी। वहाँ आये थे जामनगर।

मुमुक्षु : ऐसे तो तत्त्वार्थसूत्र ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ॐ तत्त्वार्थसूत्र जैनागम समूह के लिये। तत्त्वार्थसूत्र जैनागम समन्वय। जैन के आगम के साथ मिलाते हैं। जिनागम मूल पाठ, संस्कृत छाया भाषा टीका सहित, लो! जैन दिवाकर उपाध्याय मुनि आत्माराम... है न पूरा वाक्य। गोकुलचन्द है न, उसमें वे वहाँ जामनगर आये थे। दिल्ली के हैं।

मुमुक्षु : यह नहीं रही रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं रहे। गोकुलचन्दजी ने कहा था, यह महाराज यहाँ नहीं रह सकते। उनकी लाईन अलग बात करते हैं। ऐसा कहते थे। वे एकदम उससे कहते थे। विरोध से ऐसा नहीं। गोकुलचन्द व्यक्ति खानदानी था। आमन्त्रण देने आया था न? उसका - बड़े साधु का मिलने का था न? ब्यावर।

मुमुक्षु : अजमेर में कांफ्रेंस।

पूज्य गुरुदेवश्री : अजमेर में कांफ्रेंस होती थी। सब सेठ प्रमुख। दो दिन सुना। यह महाराज यहाँ नहीं रह सकते।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहते हैं कि .... उसका प्रमुख। बड़े पैसेवाला। बहुत लाखोंपति और खानदानी व्यक्ति, हों! सुनने में भी उसे लगे। ओहो! यहाँ के दृष्टान्त की बात ही यह कुछ अलग लगती है। हमने तो कुछ सुनी नहीं। वीरजीभाई को कहा था। वीरजीभाई बेचारे गुजर गये।

यह तो आत्मा की बात, बापू! दूसरे प्रकार की है। आहाहा! जहाँ क्षायिकभाव का भी आश्रय लेना नहीं। अरे! जहाँ क्षायिकभाव को भी परद्रव्य-परभाव कहकर हेय बताना है। आहाहा! हेयरूप से जाननेयोग्य है। उपादेयरूप से क्षायिकभाव भी नहीं। आहाहा! त्रिकाल भगवान परमानन्द का नाथ, कहते हैं कि ऐसा एक पंचमभाव, उसका जिसने शरण लिया, ऐसे मुनि इस जगत में शोभते हैं अथवा उन्हें ही मुनि कहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)